पूजा और प्रार्थना का सार

श्री स्वामी चिदानन्द

अनुवादिका

श्री स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर २४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४

(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—18

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर २४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

ब्रह्मलीन परम पावन
श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वारा
प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में सामूहिक ध्यान के उपरान्त
दिये गये प्रवचनों का सार-संग्रह

विषय सूची

१. पूजा और प्रार्थना का सार ५

२. प्रार्थना का जीवन में स्थान ८

३. दिव्य शक्ति के साथ हमारा सम्बन्ध १२

४. परात्पर तक पहुँचिए १६

५. क्या मोक्ष सम्भव है? १९

६. ज्ञान का सर्वोत्तम पक्ष २१

१

पूजा और प्रार्थना का सार

पूजा का अर्थ कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं है। यह किसी लाभ की इच्छा से, कुछ सांसारिक, कुछ लौकिक प्राप्ति की इच्छा को ले कर नहीं है। प्रत्युत पूजा का सार है भगवान् की महिमा का गान करना, क्योंकि भगवान् ही एकमात्र महान्, स्तुत्य, भव्य और सर्वोच्च सत्ता हैं जो आराधनीय हैं। भगवान् की उपासना से बढ़ कर और कोई महान् सम्मानजनक कार्य नहीं है, इससे बढ़ कर विशेष कोई कार्य नहीं है।

अन्य सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में इतना अधिक समय व्यय हो जाता है कि इसके अतिरिक्त अपने लिए समय ही कम बचता है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी अन्य कार्य करने पड़ते हैं। व्यक्ति का सारा समय और अधिकांश शक्ति इसी में व्यय हो जाते हैं। किन्तु जब आप भगवान् की ओर उन्मुख होते हैं, उन भगवान् के जिन्होंने आपको यहाँ भेजा है और जिन्होंने एक दिन सबको पुनः वापस बुला लेना है, वह जो आपके रचयिता, पालक और संहारकर्ता हैं तो यह सब मात्र उनका धन्यवाद करने, अपनी कृतज्ञता प्रकट करने और उनकी महिमा का गान करने मात्र के ही लिए है।

भारतीय दैनिक धार्मिक जीवन के सन्दर्भ में देखें तो संस्कृत में ऐसी असंख्य रचनाएँ हैं जिन्हें स्तुतियाँ और स्तोत्र कहते हैं। यह स्तोत्र भगवान् की महिमा का वर्णन करने को ले कर हैं और स्तुतियाँ वह रचनाएँ हैं जिनमें स्तुतिकार स्वयं भगवान् को महिमान्वित करता है, उनकी महानता को महिमान्वित करता है। अतः उपासना का अर्थ है हम भगवान् के प्रति जो अनुभव कर रहे हैं, उसे व्यक्त करने का सुअवसर प्राप्त कर लेना।

दूसरी ओर, प्रार्थना वह है जिसमें आप स्वयं को भगवान् के चरणों में समर्पित करने, स्वयं को भगवान् के समर्पित होने, अपना सब-कुछ उन्हें समर्पण करके यह कहने का सुअवसर माँगते हैं कि 'हे प्रभु! मुझे आपकी महानता में पूर्ण विश्वास और भरोसा है। आप मेरे माता-पिता, मित्र-सखा, सम्बन्धी, मेरे सर्वस्व हैं। और आप सर्व हितैषी हैं, तब फिर मैं आपसे क्यों कुछ माँगू? आप जानते हैं कि मेरा भला किसमें है। आप जो करें, मुझे सहर्ष स्वीकार्य है। हे प्रभु, मेरी नहीं, आपकी इच्छा पूर्ण हो!'

यह प्रार्थना का सार है आत्म-समर्पण, परिपूर्ण-समर्पण करते हुए स्वयं को पूर्ण विश्वास सहित भगवान् के हाथों में सौंप देना। प्रार्थना में कुछ भी माँगना नहीं होता। प्रार्थना में तो स्वयं को दे देना है। प्रार्थना में माँगना तो भगवान् की संकल्पना को नीचा करना है। यदि आप प्रार्थना द्वारा कुछ माँगते हैं, तो जो आप चाहते हैं, वह सब वे करेंगे, क्योंकि वह ऐसे ही हैं। भगवान् के सम्बन्ध में एक अवधारणा

यह भी है। किन्तु जो यहाँ गुरुदेव के पावन समाधि हाल में बैठे हुए हैं, उनकी अवधारणा यह नहीं है।

अप्रबुद्ध लोग, जिनके जीवन में आध्यात्मिक आयाम अभी पूर्ण विकसित नहीं हैं जिनके लिए बाह्य लौकिक वास्तविकताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, अधिक वास्तविक हैं, अधिक अर्थपूर्ण हैं, अतः इसी चेतना में जो लिपटे हुए हैं वह भगवान् से अनेकों वस्तु-पदार्थ माँगते रहते हैं। किन्तु विवेक, विचार और वैराग्य से सम्पन्न लोग भगवान् द्वारा आशीर्वादित हैं और वह प्रार्थना तथा पूजा का सार-तत्त्व जानते हैं। वह वास्तव में भाग्यशाली हैं, क्योंकि भगवान् ने उन पर कृपा-वृष्टि की है और उनके आन्तरिक स्वभाव को इस ऊँचाई तक, इस स्तर तक उन्नत किया है।

उसी स्तर पर दृढ़ रहें। भगवान् को महिमान्वित करने के लिए पूजा करें! आत्म-समर्पण के लिए प्रार्थना करें! भगवान् की कृपा आप सब पर हो!

२

प्रार्थना का जीवन में स्थान

प्रार्थना हमारे जीवन और कार्यों का भाग बन जानी चाहिए। अपनी प्रतिदिन की पूजा के समय हम प्रायः कई स्तोत्र और स्तुतियाँ बोला करते हैं। अन्य धर्मों के लोग भी प्रार्थनाएँ करते हैं। किन्तु सभी धर्मों में इन भक्त कवियों और सन्तों द्वारा रचित स्तोत्र, स्तुतियों और प्रार्थनाओं के साथ ही कुछ अन्य मूलभूत प्रार्थनाएँ भी हैं जो उन धर्मों के धर्मग्रन्थों में मिलती हैं।

यह धर्मग्रन्थ किसी सन्त या भक्त कवि द्वारा रचित नहीं हैं। प्रायः यह माना जाता है कि उन विभिन्न धर्मों के मूल-आधार और मूल-स्रोत इन धर्मग्रन्थों के स्वयं भगवान् ही रचयिता हैं। इन प्रार्थना-गीतों को उन धर्मों के श्रद्धालु भक्त प्रायः नित्य ही गाया करते हैं। किन्तु इन प्रार्थनाओं का वास्तव में कुछ लाभ तभी है जब कि यह मात्र गाने या दोहराने के लिए प्रार्थनाएँ बन कर ही न रह जायें, बल्कि हमारे जीवन और हमारे कार्यों का एक भाग, एक हिस्सा बनें! तब यह हमारे जीवन के लिए एक शक्ति सम्पन्न, जीवन्त अर्थ से पूर्ण हो जायेंगी। यहाँ तक कि यह हमारी आध्यात्मिक उन्नति और आध्यात्मिक सफलता का साधन भी बन सकती हैं।

उदाहरण के लिए जब हम **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** और **'सर्वेषां स्वस्ति भवतु'** प्रार्थना का उच्चारण करते हैं, तब क्या हमें परमात्मा से केवल सबके सुखी रहने की, सबके भले की प्रार्थना मात्र ही करनी चाहिए अथवा हमें इसके साथ ही प्राणी मात्र के सुख और भले के लिए वास्तव में स्वयं प्रयत्नशील भी हो जाना चाहिए?

यदि हम केवल यह समझते हैं कि भगवान् को प्रार्थना कर देना ही पर्याप्त है, तब तो हमारे जीवन में इनका कोई व्यावहारिक स्थान, कोई औचित्य नहीं है। यदि हम प्रार्थना का अर्थ यह समझते हैं कि हम भगवान् की ओर उन्मुख होते हैं और इसके साथ ही अपने जीवन में भी इसे लागू करते हैं, तब तो इनका हमारे लिए पूर्णतया इससे भिन्न दूसरा ही अर्थ हो जाता है। तब यह हमारे लिए मार्ग-निर्देशक बन जाती हैं, हमारे पथ का प्रकाश बन जाती हैं। यदि हम अपनी सर्वोच्च भलाई चाहते हैं तो जिस ओर हमें आगे बढ़ना चाहिए, उसी निश्चित दिशा को यह दिखाने वाली बन जाती हैं। तब इनका हमारे जीवन के साथ एक सुदृढ़ सम्बन्ध बन जाता है।

जब हम कहते हैं : ''**सदा वसन्तं हृदयारविन्दे** अर्थात् वह सदा हमारे दिल में रहते हैं'', तब तो फिर हमें कभी भी स्वयं को भगवान् से दूर नहीं समझना चाहिए; क्योंकि हम जो कह रहे हैं, वह यदि सत्य कह रहे हैं तो फिर वह हमें कैसे छोड़ सकते हैं, हम भगवान् से फिर कैसे दूर हो सकते हैं, हम उनसे अलग कैसे हो सकते हैं।

यदि हम पुरुषसूक्त और रुद्री पाठ करते हैं, तब उसके अनुसार भगवान् हमारे हृदय के मध्य में उज्ज्वल प्रकाश के रूप में उद्भासित हो रहे हैं। हमें अपना अन्तर्मन पूर्णतया प्रकाश से आप्लावित अनुभव करना चाहिए। हम अपने भीतर किसी भी प्रकार का अन्धकार अथवा नकारात्मकता का अनुभव कर ही नहीं सकते, क्योंकि वहाँ पर तो परमात्मा हमारे भीतर की समस्त अच्छाइयों, सुन्दरताओं, धन्यताओं और शुभताओं के रूप में, उनका मूल-स्रोत बन कर, हमारे मूल-तत्त्व के रूप में बैठे हुए हैं।

हम अपनी आध्यात्मिक सभाओं की पूर्णाहुति में **'ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते'** कहते हैं। वह अनन्त, असीम, नित्य और अपार है; अतः कभी भी कम नहीं किया जा सकता। यदि इसमें से पूर्ण को भी निकाल लिया जाये, तो भी यह शेष पूर्ण ही रहता है।

इसे विभिन्न दृष्टिकोणों से विद्वत्ता के दृष्टिकोण से, दार्शनिकता के और बौद्धिकता के दृष्टिकोण से तो समझा जा ही सकता है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से भी समझा जा सकता है। यहाँ दृश्य जगत् की प्रत्येक वस्तु के वास्तविक सारतत्त्व के रूप में वह परिपूर्ण परम तत्त्व ही विद्यमान है। यह सब-कुछ भी स्वयं में परिपूर्ण है। इसका अर्थ है कि उस दिव्य सत्ता की परिपूर्णता यहाँ हमारे जीवन में, हमारे वर्तमान परिवेश में, प्रत्येक स्थान में, प्रत्येक परिस्थिति में, सदा-सर्वदा

पूर्णरूपेण व्याप्त है। वह परम सत्ता स्वयं ही यह सब-कुछ बनी हुई है और उसी ने सबको आच्छादित किया हुआ है।

अतः इस रूप में यदि इस प्रार्थना को समझ लिया जाये और ग्रहण कर लिया जाये, और इसके आध्यात्मिक निहितार्थ को सही रूप में समझा जाये, तब हमें गहराई से सोचना होगा कि इस अर्थ का हमारे जीवन में क्या स्थान है, कि इस सत्य को हम कितनी निकटता से अनुभव करते हैं और हमारे आध्यात्मिक जीवन की सफलता में इसने क्या भूमिका निभानी है। यह सब-कुछ आपको सोचना होगा, मनन करना होगा।

परम पिता परमात्मा और श्रद्धेय गुरुदेव के आशीर्वाद हम पर हों कि इस प्रकार से समझने की, इस प्रकार निहितार्थ जानने की अन्तर्दृष्टि हमें प्राप्त हो जिसके द्वारा हम इन प्राचीन आदि ग्रन्थों में वर्णित प्रार्थनाओं में अभिव्यक्त गुह्य सत्यों को अपने जीवन पर लागू कर सकें।

३

दिव्य शक्ति के साथ हमारा सम्बन्ध

परम शाश्वत सर्वातीत दिव्य तत्त्व को, उस सत्-चित्-आनन्द तत्त्व को हमारा श्रद्धापूर्ण नमन है जो कि समस्त वस्तु-पदार्थों का चरम मूल कारण है, जिसके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है। जो स्वयं कारण रहित है, किन्तु सभी कारणों का कारण है। उस परमात्मा को, अनिर्वचनीय और अवर्णनीय को हम श्रद्धा सहित प्रणाम करते हैं! आप सब पर उनकी कृपा-वृष्टि हो!

हम परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होंने कि उस एकमेव, परम, सर्वातीत दिव्य तत्त्व के विविध पहलुओं और रूपों की व्याख्या की। वास्तविक अनुभूति में स्थित होने के कारण उन्हें इस परम तत्त्व के महिमामयी प्रकटीकरणों, अभिव्यक्तियों का बोध था। अतः उन्होंने प्रत्येक रूप की महिमा का वर्णन किया, क्योंकि वह जानते थे कि द्वैत अन्ततोगत्वा अद्वैत में ही लीन हो जाता है। अनेकरूपता का किसी भी प्रकार से ब्रह्म की अद्वैत-ऐक्यता से विरोध नहीं है, क्योंकि वस्तुतः वह एक ही हैं। वह ब्रह्म ही अनेक रूप हो कर प्रकट होता है। इसलिए 'अनेक' और 'एक' एक ही हैं।

इसीलिए उन्होंने भगवान् राम के सम्बन्ध में लिखा, 'भगवान् शिव और उनकी आराधना' के विषय में लिखा, भगवान् षण्मुख के

सम्बन्ध में लिखा, 'भगवान् कृष्ण और उनकी लीलाओं' के सम्बन्ध में लिखा; दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के सम्बन्ध में लिखा; उन्होंने 'Hindu Gods and Goddesses' (अर्थात् हिन्दू देवी-देवता) नामक पुस्तक लिखी और वह ये भली-भाँति जानते थे कि इन सबके विषय में लिखते हुए वह केवल एक 'एकमेव अद्वितीय परब्रह्म' के ही विषय में लिख रहे हैं।

वह परमात्मा ज्ञान के प्रकाश के रूप में भी प्रकट होता है। वही परम तत्त्व आनन्द के रूप में, शान्ति के रूप में भी प्रकट होता है। **'शान्तो अयम् आत्मा'; 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'; ज्योतिषां अपि तद् ज्योति तमसः परमुच्यते।'**

यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् की ही अनिर्वचनीय आदि शक्ति है। यह महाशक्ति है। जो-कुछ भी हम देखते हैं, उन सबके रूप में यही महाशक्ति स्वयं प्रकट होती है। यदि हमारी भुजाओं में क्षमता है, तो यह उसी की शक्ति है। यदि हमारे मन में दृढ़ता है, तो यह उन्हीं की शक्ति है। यदि हममें इच्छा-शक्ति है, तो यह उन्हीं की शक्ति है। हमारी बुद्धि उन्हीं की शक्ति है। उन्हीं के द्वारा प्रदत्त समस्त शक्तियों से हमारा यह व्यक्तित्व बनता है। अतः यह सभी शक्तियाँ उनकी ही अभिव्यक्ति होने के नाते पावन और दिव्य हैं।

अब प्रश्न उठता है कि यह जो हमें उनके द्वारा मानवीय क्षमताएँ, योग्यताएँ और शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं, इनके साथ हमारा सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए? उनमें हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए? क्योंकि हम दिव्य शक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहे हैं, इसलिए उत्तर

का एक अंश तो निश्चित रूप से स्पष्ट है कि हमें इसकी दिव्यता, इसके दैवी मूल-स्रोत को ध्यान में रखते हुए, इसके साथ इसी के उपयुक्त व्यवहार करना चाहिए। इनका किसी भी कारण से दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। यहाँ तक कि धन-सम्पत्ति भी ऐसी ही शक्ति है।

और इस दिव्य शक्ति के उपयोग का समुचित ढंग क्या है? इसका उत्तर देने से पूर्व हमें थोड़ा विचार करना है कि हम इसको किस क्षेत्र में उपयोग करने जा रहे हैं? थोड़े से विचार से यह स्पष्ट हो जायेगा हमारा क्षेत्र द्विविध है। एक ओर हम इस बाह्य मानव-जगत् से जुड़े हुए हैं, दूसरी ओर आन्तरिक आध्यात्मिक जगत् से संयुक्त हैं। इसलिए स्पष्ट रूप से ही इन शक्तियों का उपयोग इस बाह्य मानवीय जगत् के क्षेत्र में तथा साथ ही उस आन्तरिक आध्यात्मिक जगत् जहाँ हम भगवान् के साथ जुड़े हुए हैं के क्षेत्र में भी होगा। यहाँ हमारा सम्बन्ध मनुष्य मात्र के साथ है। अतः दोनों ही क्षेत्रों में उपयुक्त ढंग से व्यवहार करें।

अपने समस्त उपदेशों में गुरुदेव ने हमें क्या शिक्षा दी है? उन्होंने आन्तरिक और बाह्य, दोनों क्षेत्रों में इन शक्तियों को आदर्श ढंग से उपयोग करने की शिक्षा दी है। अपने आन्तरिक आध्यात्मिक क्षेत्र में इस शक्ति का उपयोग, इसी जन्म में ईश्वरानुभूति प्राप्त करने में करें और बाह्य मानवीय क्षेत्र में भी इन शक्तियों का उपयोग उसी समान ढंग से करें। वही समान ढंग क्या है? जैसे आन्तरिक आध्यात्मिक जगत् में आप उसका उपयोग अपनी सर्वोच्च भलाई के लिए कर रहे हैं, उसी प्रकार बाह्य रूप में अपनी समस्त शक्तियों का उपयोग मानव

जगत् की सर्वोच्च भलाई के लिए, प्राणी मात्र की सर्वोच्च भलाई के लिए करें। जैसे अपने सर्वोच्च भले के लिए कार्य करते हैं, उसी प्रकार समस्त जगत् के सर्वोच्च भले के सभी के भले के लिए कार्य करें!

अतः उन्होंने हमें पूर्णतया स्पष्ट रूप में बताया कि हमें अपना जीवन कैसे जीना चाहिए, कैसे अपनी इन शक्तियों का उपयोग करना चाहिए, कैसे हमें स्वयं को इन शक्तियों के मूल-स्रोत के योग्य बनाना चाहिए। हमने इन शक्तियों को बाह्य और आन्तरिक जगत् के लिए, प्रपंच और परमार्थ के लिए, जगत् और परम लक्ष्य के लिए, दोनों ही के लिए उपयोग करना है।

हमारे पास जब स्पष्ट निर्देशन उपलब्ध है, तब फिर संकोच-शंका कैसी? हम प्रतीक्षा क्यों करते रहें? जो और जैसे करने के लिए स्पष्टतया बता दिया गया है, करने के लिए कह दिया गया है, उसमें हमें तत्काल लग जाना चाहिए। हमें एकदम स्पष्ट मार्ग दिखा दिया गया है, अपना जीवन जीने का ढंग और उसकी दिशा भी दिखा दी गयी है। हमें सर्वोच्च आशीर्वाद प्राप्त है कि जीवन में कोई संशय, कोई अस्पष्टता, कोई अनिश्चितता न रहे, क्योंकि भगवान् ने हमें अपने जीवन के विषय में, अपने कार्य, अपने कर्तव्य के विषय में विवेक-बुद्धि का महान् वरदान दिया हुआ है।

अतः हम भगवान् और गुरुदेव के प्रति अनुग्रहित हों! भगवान्, गुरुदेव और पराशक्ति का आशीर्वाद आप सब पर हो!

४

परात्पर तक पहुँचिए

हे शाश्वत, सर्वातीत, परम दिव्य सत्ता, आपको श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं! आप, जो मन-वाणी से परे हैं, मनुष्य की विचार-शक्ति, तर्क-शक्ति, कल्पना-शक्ति और विवेक-शक्ति से परे हैं; आप, जो ऐसी अवर्णनीय, अकथनीय सत्ता हैं, जिसे केवल निज आत्मा की गहराई में ही अनुभव किया जा सकता है; और जिसे केवल वही अनुभव कर सकते हैं जिन पर आप कृपा करके स्वयं को प्रकट करने के लिए चुनते हैं। आपकी दिव्य कृपा-वृष्टि हम सब पर हो!

हमारे उन परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज को श्रद्धापूर्ण प्रणाम है, जिन्होंने हमें उस सर्वातीत का ज्ञान, आत्मज्ञान अथवा परमात्म ज्ञान, परम सत्ता का ज्ञान प्रदान किया। उनकी गुरु-कृपा और आशीर्वाद हम सब पर निरन्तर रहें!

हे साधक वृन्द! सदैव सर्वातीत तक पहुँचिए! अपनी वर्तमान आध्यात्मिक उपलब्धियों, आध्यात्मिक उन्नति अथवा प्राप्ति से सन्तुष्ट न रहें! लगे रहें! सदैव ऊपर की ओर बढ़ते चलें ! अपनी अब तक की प्राप्ति, सफलता, चेतना के स्तर, उन्नति और अनुभूति की अवस्था से भी अतीत तक पहुँचने का प्रयास करते रहें। इसी में उच्चतम अनुभव प्राप्त करने का रहस्य छिपा हुआ है।

हमारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से अतीत सूक्ष्म अति-भौतिक परम तत्त्व है। वही वास्तविक है जिसको पाना है। वही निधि है, अमूल्य रत्न है, आपके भीतर के स्वर्ग का साम्राज्य है। पंचकोषों से भी परे कोई है जो दृश्य कोष और अदृश्य कोषों से अतीत है। यह परम कोष नहीं, अति कोष है; बल्कि यह कोई कोष है ही नहीं, सभी कोष इससे पीछे छूट जाते हैं। इन पंचकोषों को पीछे छोड़ कर उसे प्राप्त करें जो इनसे अतीत है।

जाग्रत, स्वप्न और गहन सुषुप्ति की अवस्था से परे कुछ है वही है जो इन तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा है। उसको खोजने का, जानने का और अन्वेषण करने का प्रयास करें। इसी ज्ञान में परम चैतन्य का तथा चेतना की उन तीनों अवस्थाओं से अतीत जाने का रहस्य निहित है जो कि सामान्य मनुष्य के अनुभव की पहुँच के भीतर है।

असंख्य, विविध नाम-रूपों और वस्तु-पदार्थों के इस मानव-जगत् में, इस बाह्य जगत् और सुदूर अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्रमा, सितारों से अतीत, सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी से देखे जा सकने वाले समस्त नक्षत्रों इत्यादि सबसे परे पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के पंचतत्त्वों से निर्मित समस्त दृश्य जगत् से अतीत जो परम तत्त्व है उसे जानने का, उस तक पहुँचने का प्रयास करें। इसी में मोक्ष का रहस्य निहित है।

द्रष्टव्य के परे अदृश्य है। कहा गया है कि 'द्रष्टव्य ही विश्वसनीय है'; किन्तु 'अदृश्य वास्तविकता' इस दृश्य से कहीं अधिक सत्य है मानव-जगत् के सीमित व्यावहारिक सत्य से कहीं अधिक विश्वसनीय है। अतः दृश्य से परे जायें और सूक्ष्म अदृश्य परम सत्ता को जानने का प्रयत्न करें। वही ऐसा एक विशिष्ट ज्ञान और कला है जो आपको दृश्य से परे अदृश्य के साम्राज्य तक ले जाने योग्य बना देगा।

अतः सदा उस परम सत्ता को जानें जो सर्वातीत है। सदैव उसी के जिज्ञासु बनें जो सामान्य अनुभव से ऊपर है, जो उस सबसे अतीत है जो हमें यहाँ जानने में आता है। उस अदृश्य, अज्ञात, अलक्ष्य और सर्वातीत परम तत्त्व के जिज्ञासु रहें जो सबसे परे है, परात्पर है, वहीं तक पहुँचें। उसी की खोज में लगे रहें। उस सर्वातीत परमात्मा की अनुभूति की सदा कामना करें। स्वयं से भी अतीत जा कर उस सर्वातीत परम प्रभु तक की उड़ान भरें।

५

क्या मोक्ष सम्भव है?

ईश-कृपा और गुरुदेव के चयनित आशीर्वादों से आपकी कामनाओं की पूर्ति हो, आपको जीवन के परम लक्ष्य की पूर्णरूपेण प्राप्ति हो, ताकि आप यहाँ इसी जीवन में, इसी शरीर में मुक्त प्राणी हो जायें आप ऐसे व्यक्ति बन जायें जिसके लिए दुःख, कष्ट और भ्रान्तियाँ अजनबी हों, उनका कोई अर्थ न रहे। बन्धन का कोई अर्थ न रहे। मृत्यु का कोई अर्थ न रहे। यही लक्ष्य है, यही उद्देश्य है। इस प्रकार आप ज्ञान के प्रकाश की अवस्था में और अपने शाश्वत स्वरूप की जागरूकता में स्थित हो जायें।

धर्मग्रन्थों में इसकी सम्भावना को बार-बार दोहराया और घोषित किया गया है। इसी जन्म में मुक्त होना, जीवन्मुक्त हो जाना यह परम लक्ष्य है। क्या यह सम्भव है? हम इसका सीधा उत्तर नहीं दे सकते, किन्तु यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह असम्भव नहीं है। इतना आश्वासन पर्याप्त है। इसका अर्थ है कि यह सम्भव तो है, किन्तु निश्चित रूप से इतना सरल नहीं है जितना कि कोई मिष्टान्न खा लेना। खाना आसान हो सकता है, किन्तु उसे तैयार करने में परिश्रम की आवश्यकता होती है।

सभी महान् व्यक्तियों ने इसे स्वयं प्राप्त करके यह सिद्ध कर दिया है कि मोक्ष सम्भव है, और उसके उपरान्त उन्होंने उद्घोषित किया है कि मोक्ष सम्भव है। जो एक ने प्राप्त कर लिया, उसे सभी प्राप्त कर सकते हैं। आप इसी के लिए बनाये गये हैं।

६

ज्ञान का सर्वोत्तम पक्ष

आध्यात्मिक जीवन का सार है आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना। गुरु आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत है। धर्मग्रन्थ आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत हैं। विशेष विषयों पर विशेष पुस्तकें आध्यात्मिक ज्ञान की स्रोत हैं। ज्ञान का उद्देश्य है अज्ञान को दूर करना। हम अज्ञान को दूर हटा कर ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। ज्ञान स्वयं ही यह कार्य करता है कि अज्ञान से हमें छुटकारा दिला देता है और स्वयं उसका स्थान ले लेता है। यह अन्धकार को दूर करके प्रकाश को लाता है।

किन्तु अज्ञान को दूर हटाने के कार्य के अतिरिक्त हम ज्ञान के विषय में एक अन्य प्रश्न पूछते हैं। ज्ञान का सर्वोत्तम पक्ष क्या है? क्या कभी इस विषय में आपने सोचा है? हमें ज्ञान प्राप्त है; किन्तु यह जो ज्ञान हमने प्राप्त किया है, इसका सबसे बढ़िया पहलू क्या है? हम कह सकते हैं कि ज्ञान अपने-आपमें अविभाज्य है यह एक सम्पूर्ण चीज है किन्तु हमारे सन्दर्भ में इसके हिस्से हैं।

हम जब ज्ञान को और स्वयं को देखते हैं, ज्ञान के हमसे सम्बन्ध के विषय में विचार करते हैं, तब यह द्विविध है। हमारा ज्ञान से सम्बन्ध है, और ज्ञान का हम से सम्बन्ध है। अतः यह प्रश्न कि ज्ञान का सबसे बढ़िया हिस्सा क्या है, एक विशेष महत्त्व रखता है। इसका विशेष औचित्य है।

ज्ञान का प्रथम पहलू है कि हम कुछ ऐसा जान गये हैं जो हम पहले तब नहीं जानते थे जब हमें यह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था, हमने इस ज्ञान-रूपी कृपा को प्राप्त नहीं किया था। गुरु हमें ज्ञान के रूप में ऐसे आशीर्वाद देते हैं जो क्रमशः हमें मोक्ष की ओर ले जाते हैं। अतः पहले आप नहीं जानते थे, जब ज्ञान की प्राप्ति हुई तब आप जान गये। इस प्रकार 'जानना' ज्ञान का सारतत्त्वीय पहलू है जो हमें वह सब ज्ञात करवाता है, जो हमारे अनुभव में आने से पहले हमें ज्ञात नहीं था। इसलिए किसी भी विषय या वस्तु के सम्बन्ध में जानना, उसका सार है।

तो भी एक व्यक्ति, जो जानता है, और दूसरा जो नहीं जानता है दोनों में क्या अन्तर है? क्या दोनों में कुछ अन्तर है? यही ज्ञान का दूसरा पक्ष है जब किसी ज्ञान को पा कर व्यक्ति में कुछ अन्तर आ जाता है। व्यक्ति अधिक अनुबोधक हो जाता है, अधिक समझ-बूझ वाला, अधिक सहनशील और अधिक सहानुभूतिशील हो जाता है। उसमें आदान-प्रदान की प्रवृत्ति अधिक विकसित हो जाती है। ज्ञान यह सब कर सकता है, किन्तु इसमें एक बड़ा 'यदि' आता है। और बड़ा 'यदि' यह है कि ज्ञान यह सब-कुछ कर सकता है यदि व्यक्ति ज्ञान को अपने व्यक्तित्व में यह परिवर्तनकारी प्रभाव लाने दे तो! वह अधिक अच्छे व्यक्ति बन सकते हैं; क्योंकि ज्ञान होने से पहले वे बहुत-सी गलतियाँ करते थे, अब ज्ञान हो जाने से वह उन सब गलतियों को करने से बच जाते हैं। अब वह अधिक अच्छे ढंग से, एक अलग और अधिक उदात्त ढंग से कार्य करते हैं।

अतः कुछ जान लेना ज्ञान है, और जब यह जान लेना हममें अधिक अच्छा परिवर्तन ले आता है, तब यह 'जानने' से 'होना' बन जाता है। जब हमें पता नहीं था, तब ज्ञान 'जानना' बनता है। किन्तु यदि हम जान लेने मात्र से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और उसे जान लेने के स्तर तक ही सीमित रखते हैं, हममें इस जानने से कुछ भी परिवर्तन नहीं आता, तब तो ज्ञान का केवल एक ही पक्ष, एक ही भाग उपस्थित हुआ, उसका दूसरा अधिक अच्छा पहलू प्रकट नहीं हुआ। ज्ञान का दूसरा भाग है ज्ञान हो जाने के कारण कुछ अलग, कुछ सकारात्मक और सक्रिय रूप में, कुछ भिन्न प्रकार का बन जाना।

और ज्ञान का एक इससे भी अधिक अच्छा पक्ष है। यह परिवर्तन निश्चित रूप से एक सामाजिक सम्पत्ति बन जाना चाहिए। यह इस रूप में मूल्यवान् वस्तु हो जानी चाहिए जिसका अन्य लोगों की भलाई के रूप में प्रभाव हो। यह ज्ञान का तीसरा पहलू है जो हमारे सामने आया है। ज्ञान को जानने वाला 'बनने' से एक परिवर्तित व्यक्ति होना और परिवर्तित व्यक्ति हो कर मानवीय सम्बन्धों की दृष्टि से एक सामाजिक मूल्यवान् सम्पत्ति बन जाना केवल आत्म-संस्कृति, आत्म-विकास और नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से ही नहीं, दूसरों की प्रसन्नता और भलाई की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होना।

सम्भवतया यह 'ज्ञान का सर्वोच्च पक्ष' है ज्ञान का 'करना' वाला पक्ष ज्ञान को मानवीय सम्बन्धों में रचनात्मक रूप से वास्तव में व्यावहारिक रूप में अभिव्यक्त करना। अर्थात् दूसरों से ऐसा व्यवहार करना कि आप जो भी कार्य करें, वह दूसरों के लिए

लाभकारी हो जाये। मानो आपका हर कार्य ही दूसरों की भलाई का, उनकी बेहतरी का एक बीज हो, जो उनमें कुछ-न-कुछ सकारात्मकता, कुछ सहायता ले कर आये। कुछ ऐसा हो जिससे दूसरे स्वयं को लाभान्वित हुआ अनुभव करें। यह ज्ञान का तीसरा पक्ष है जो कि सर्वोत्तम है।

'जानना' अच्छा है; यह ज्ञान का अद्भुत पहलू है। 'होना' या 'बनना' उससे अधिक अच्छा है, यह ज्ञान का अत्यन्त प्रशंसनीय पक्ष है, अत्यधिक मूल्यवान् भाग है यह ज्ञान का। किन्तु 'करना' सर्वोत्तम है, क्योंकि आप जैसे-जैसे संसार में कार्यरत रहते हुए अपना जीवन जीते हैं, वैसे ही यह अन्य सब प्राणी मात्र पर सकारात्मक रूप में, संरचनात्मक रूप में प्रभावशाली होता है। यह समस्त प्राणियों से, भगवान् की समग्र सृष्टि से सम्बन्धित आपके जीवन में एक मंगलप्रद के रूप में, एक आशीर्वाद के रूप में एक महान् मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण कार्य बन जाता है। अतः ज्ञान का सर्वोत्तम पक्ष है ज्ञान का व्यावहारिक रूप, आपके व्यक्तित्व पर मांगलिकता के रूप में, दूसरों की बेहतरी और भलाई के रूप में यह ज्ञान का परिवर्तनकारी प्रभाव है।